आदाननिक्षेपणसमिति। मुनि को वस्तु लेने-रखने की विधि की पद्धति। इसकी टीका।

यह, अपहृतसंयमियों को... अर्थात् न्यून संयमवाले को, ऐसा। **(अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग,...)** सरागचारित्र कहो या शुभोपयोग में आया, ऐसा कहो। **उपकरण लेते-रखते समय...** परन्तु **संयमज्ञानादिक के उपकरण लेते-रखते समय...** ऐसा। संयम और ज्ञान तो है, परन्तु न्यून है। सातवें गुणस्थान में जैसा चाहिए, वैसा छठवें में नहीं है। इससे उसे समिति का प्रकार कहा है। जिसे विकल्प है और अन्दर दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी है, उसे यह आदाननिक्षेपणसमिति कही गयी है। **उपेक्षासंयमियों को...** जिसे अन्दर में शुद्धोपयोग हुआ है, उत्सर्ग है, निश्चयनय सर्व परित्याग है। उपेक्षासंयमी **(उपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग - ये सब एकार्थ हैं।) पुस्तक, कमण्डल आदि नहीं होते;....** वे तो आत्मा के ध्यान में होते हैं। सातवें गुणस्थान में अप्रमत्तदशा है। शुद्ध आनन्द के अनुभव में होते हैं। उन्हें यह पुस्तक, कमण्डल होते नहीं।

वे परमजिनमुनि एकान्त में (सर्वथा) निस्पृह होते हैं; इसीलिए वे बाह्य उपकरणरहित होते हैं। अन्तर के ध्यान में होवे, उन्हें बाह्य उपकरण नहीं होते। **अभ्यन्तर उपकरणभूत,...** उन्हें होता है कितना ? ध्यान में मुनि छठवें गुणस्थान से आगे जाकर सातवें गुणस्थान में ध्यान में आते हैं, तब उन्हें **अभ्यन्तर उपकरणभूत, निज परमतत्त्व को प्रकाशित करने में चतुर ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है।** लो। निज परमतत्त्व आनन्दस्वरूप को प्रकाशित करने में चतुर **ऐसा जो निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान,...** वह उनका उपकरण है। अन्तर-ज्ञान जो स्वरूप को पकड़कर अनुभवता है, वह ज्ञान उनका उपकरण है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान की पर्याय द्वारा पूरा आत्मा अनुभव में लिया; इसलिए उसे-ज्ञान को उपकरण कहने में आता है। अपेक्षा संयमी वीतरागी शुद्धोपयोगी है, उनको। **अन्य कुछ उन्हें उपादेय नहीं है।** लो।

अपहृतसंयमधरों को... परन्तु जो छठवें गुणस्थान में जिसे शुभराग का विकल्प उत्पन्न हुआ है, वह व्यवहारनय में आया है, उसे **परमागम के अर्थ का पुनः पुनः...** परम-आगम सिद्धान्त सर्वज्ञ कथित। **पुनः पुनः... प्रत्यभिज्ञान होने में कारणभूत ऐसी पुस्तक...**

प्रत्यभिज्ञान अर्थात् था, उसे यही है – ऐसा निर्णय होने में विशेष पुस्तक निमित्त है, ऐसा कहते हैं। मुनि को व्यवहार में वह ज्ञान का उपकरण है।

शौच का उपकरण कायविशुद्धि के हेतुभूत कमण्डल है;... जंगल (दस्त) आदि साफ होने के लिए कायविशुद्धि के निमित्त पानी का कमण्डल होता है, बस। मुनि को पात्रा-बात्रा होते नहीं। भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आदान... यहाँ आदाननिक्षेपण। बीच में वे शब्द डाले हैं न।... समिति है न! खबर है न! खोटी है।

यहाँ तो आदाननिक्षेपण, बस। किसका? कि ज्ञान के उपकरणरूपी पुस्तक का और कमण्डल का तथा **संयम का उपकरण-हेतु, पींछी है।** ऐसा मार्ग है। फिर कोई ऐसा कहते हैं, यह तो दिगम्बर के शास्त्रों में है। हमारे शास्त्रों में तो अनादि का यह है, ऐसा कहे।

मुमुक्षु : इन दो में से सच्चे कौन, यह निर्णय करना पड़े न। जब दोनों परस्पर विरुद्ध कहनेवाले हों तो सत्य के शोधक को निर्णय करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मार्ग ही अनादि का यह है। बीच में निकले, इसलिए फिर पूरा मार्ग ही बदल डाला। परन्तु अब यह बात तो जिसे मध्यस्थ के विचारना हो, सत्य को शोधना हो तो यह बात है। मुनि को तो एक पुस्तक होती है, कमण्डल होता है और पींछी, बस।

इन उपकरणों को लेते-रखते समय... लो! इस मुनिपने की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। किसे मुनि कहना? आहाहा! **उत्पन्न होनेवाली प्रयत्नपरिणामरूप विशुद्धि ही...** लो! यहाँ शुभभाव को विशुद्धि कहा। वही आदाननिक्षेपणसमिति है। समिति का नाम ही यह है-आदाननिक्षेपण। लेना-रखना, बस इतना। क्या? कि ये तीन। पुस्तक, कमण्डल, पिच्छी। **ऐसा (शास्त्र में) कहा है।** है न? **'निर्दिष्टेति'** है न पाठ में? भवति, ऐसा। **'निर्दिष्टेति'** ऐसा भगवान ने सिद्धान्त में यह कहा है। इससे विरुद्ध, वह सिद्धान्त का कथन नहीं है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न, देखो न! **'होदि त्ति णिद्दिट्ठा'** – भगवान ने ऐसा कहा है और भगवान के सिद्धान्त में इतना है। उन्हें (मुनि को) तीन उपकरण के अतिरिक्त दूसरा होता नहीं।

श्लोक-८७

अब, ६४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां,
परम-जिनमुनीनां संहतौ क्षान्तिमैत्री।
त्वमपि कुरु मनःपङ्केरुहे भव्य नित्यं,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः ।।८७।।

(हरिगीत)

समितियों में समिति यह, उत्तम मुनि को शोभती।
उन परम जिनमुनि सङ्ग में, है क्षमा एवं मैत्री॥
हे भव्य! तुम भी मन कमल में, सदा यह धारण करो।
परमश्रीमय कामिनी के, शीघ्र ही प्रिय कान्त हो॥

[श्लोकार्थः—] उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति, समितियों में शोभती है। उसके संग में क्षान्ति और मैत्री होते हैं; (अर्थात्, इस समितियुक्त मुनि को धीरज-सहनशीलता-क्षमा और मैत्रीभाव होते हैं।) हे भव्य! तू भी मन-कमल में सदा वह समिति धारण कर, कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का प्रिय कान्त होगा; (अर्थात्, मुक्तिलक्ष्मी का वरण करेगा।)

श्लोक-८७ पर प्रवचन

अब, ६४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— अब, स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव (श्लोक कहते हैं)।

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां,
परम-जिनमुनीनां संहतौ क्षान्तिमैत्री।
त्वमपि कुरु मनःपङ्केरुहे भव्य नित्यं,
भवसि हि परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः ।।८७।।

श्लोकार्थ : उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति,... उत्तम परमजिनमुनियों की यह समिति। आहाहा! **यह समिति, समितियों में शोभती है।** सब समितियों में यह समिति शोभती है – ऐसा कहते हैं। **उसके संग में क्षान्ति और मैत्री होते हैं;...** जिसे ऐसी समिति हो, उसे धीरज होती है, सहनशीलता होती है। धीरज अर्थात् सहनशीलता। **(क्षमा और मैत्रीभाव होते हैं।)** धीरज अर्थात् सहनशीलता और क्षमा, ऐसा। इसका नाम क्षमा। धीरज होती है। उतावल नहीं। शान्त है। अहो! वीतराग कहते हैं कि सन्त-मुनिपना ऐसा है। अन्तर में जिन्हें आत्मानुभव होता है; तदुपरान्त संयम और स्थिरता भी होती है और ऐसी समिति का भाव जिन्हें होता है, उसके साथ क्षमा और मैत्रीभाव होता है।

हे भव्य! तू भी मन-कमल में... हे भव्य! तू भी मन-कमल में **सदा वह समिति धारण कर,...** ऐसी समिति हो, उसे धारण कर। यहाँ तो मुनि की बात है न! दूसरे को समझाते हैं कि मुनिपना ऐसा होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से मुनिपना माने तो यह गुरु में – उसकी श्रद्धा में भूल है और देव में भी उसकी भूल हुई। देव ने ऐसा कहा न! शास्त्र में वैसा (अन्य प्रकार) कहा नहीं और शास्त्र में वैसा कहा – ऐसा माने, यह तीनों में उसकी भूल है। मन, वचन और काया। **मन-कमल में सदा वह समिति धारण कर, कि जिससे तू परमश्रीरूपी कामिनी का प्रिय...** परमानन्दरूपीदशा, अतीन्द्रिय परम आनन्दरूपी मुक्तदशा, ऐसी तेरी परिणति, उसका **प्रिय कान्त होगा;...** वह परिणति तुझे एक समय भी छोड़ेगी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह उत्सर्गमार्ग है, वह अपवादमार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प आया, वह अपवाद; विकल्परहित यह उत्सर्ग। विकल्प आया, वह व्यवहारनय; यह स्थिरता हुई, वह निश्चयनय। विकल्प आया, वह अपहृत; यह उपेक्षा। विकल्प आया, वह शुभोपयोग; यह शुद्धोपयोग। कहो, समझ में आया? विकल्प आया, वह एकदेश परित्याग, यह सर्वदेश परित्याग। कहो, एकदेश परित्याग। और एकदेश परित्याग, तो श्रावक कहलाता है। महाव्रत, वे अणुव्रत हैं। महाव्रत, वह अणुव्रत है। विकल्प है न? मार्ग बहुत अलग। पूरा मार्ग बदल डाला। लोगों को खबर भी नहीं होती कि वीतराग का मार्ग क्या है? जिसमें जन्में, वह उनका धर्म। हो गया, जाओ। उस कुल में गिने। ६५ वीं गाथा।

गाथा-६५

पासुग-भूमि-पदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स।।६५।।

प्रासुक-भूमिप्रदेशे गूढे रहिते परोपरोधेन।
उच्चारादित्यागः प्रतिष्ठासमितिर्भवेत्तस्य।।६५।।

मुनीनां कायमलादित्यागस्थानशुद्धिकथनमिदम्। शुद्धनिश्चयतो जीवस्य देहाभावान्न चान्नग्रहणपरिणतिः। व्यवहारतो देहः विद्यते, तस्यैव हि देहे सति ह्याहारग्रहणं भवति, आहार-ग्रहणान्मलमूत्रादयः सम्भवन्त्येव। अत एव संयमिनां मलमूत्रविसर्गस्थानं निर्जन्तुकं परेषामु-परोधेन विरहितम्। तत्र स्थाने शरीरधर्मं कृत्वा पश्चात्तस्मात्स्थानादुत्तरेण कतिचित् पदानि गत्वा ह्युदङ्मुखः स्थित्वा चोत्सृज्य कायकर्माणि सन्सारकारणं परिणामं मनश्च सन्सृतेर्निमित्तं, स्वात्मानमव्यग्रो भूत्वा ध्यायति यः परमसंयमी मुहुर्मुहः कलेवरस्याप्यशुचित्वं वा परिभावयति, तस्य खलु प्रतिष्ठापनसमितिरिति। नान्येषां स्वैरवृत्तीनां यतिनामधारिणां काचित् समितिरिति।

जो गूढ़ प्रासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती।
मल त्याग करते हैं उन्हें, समिति प्रतिष्ठापन कही॥ ६५॥

गाथार्थ :—[परोपरोधेन रहिते] जिसे पर के उपरोधरहित (दूसरे से रोका न जाये, ऐसा), [गूढे] गूढ़ और [प्रासुकभूमिप्रदेशे] प्रासुक भूमिप्रदेश में [उच्चारादि-त्यागः] मलादि का त्याग हो, [तस्य] उसे [प्रतिष्ठासमितिः] प्रतिष्ठापनसमिति [भवेत्] होती है।

टीका :—यह, मुनियों को कायमलादित्याग के स्थान की शुद्धि का कथन है।

शुद्धनिश्चय से जीव को देह का अभाव होने से अन्नग्रहणरूप परिणति नहीं है। व्यवहार से (जीव को) देह है; इसलिए उसी को देह होने से आहारग्रहण है; आहारग्रहण के कारण मलमूत्रादिक सम्भवित हैं ही। इसीलिए संयमियों को मलमूत्रादिक के

उत्सर्ग का (त्याग का) स्थान जन्तुरहित तथा पर के उपरोधरहित होता है। उस स्थान पर शरीरधर्म करके फिर जो परसंयमी उस स्थान से उत्तर दिशा में कुछ डग जाकर उत्तरमुख खड़े रहकर, कायकर्मों का (शरीर की क्रियाओं का), संसार के कारणभूत हों ऐसे परिणामों का तथा संसार के निमित्तभूत मन का उत्सर्ग करके, निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है अथवा पुनः पुनः कलेवर की (शरीर की) भी अशुचिता सर्व ओर से भाता है, उसे वास्तव में प्रतिष्ठापनसमिति होती है। दूसरे स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को कोई समिति नहीं होती।

गाथा-६५ पर प्रवचन

प्रतिष्ठापन। पाँचवीं है न ?

पासुग-भूमि-पदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स।।६५।।

पइट्ठा प्रतिष्ठा। छोड़ना।

जो गूढ़ प्रासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती।
मल त्याग करते हैं उन्हें, समिति प्रतिष्ठापन कही॥ ६५॥

टीका : यह, मुनियों को कायमलादित्याग के स्थान की शुद्धि का कथन है। कायमलादि, दिशा / दस्त जाना आदि। **शुद्धनिश्चय से जीव को देह का अभाव होने से...** मूल तो शुद्धनिश्चय से तो देह, आत्मा को है नहीं। इसलिए **अन्नग्रहणरूप परिणति नहीं है।** इसलिए अन्नग्रहण करने का विकल्प भी उसे नहीं है। वह आत्मा में है ही नहीं। **व्यवहार से (जीव को) देह है;...** निमित्तरूप से। संयोगी चीज़ है। **इसलिए उसी को देह होने से आहारग्रहण है;...** विकल्प है न ? उतना। आहारग्रहण तो आहार के कारण से है, परन्तु वह विकल्प है न! आहारग्रहण करने का विकल्प है। **आहारग्रहण के कारण मलमूत्रादिक सम्भवित हैं ही।** आहार किया, इसलिए फिर मलमूत्रादि होते हैं। **इसीलिए संयमियों को मलमूत्रादिक के उत्सर्ग का (त्याग का) स्थान जन्तुरहित...** जहाँ एकेन्द्रियादि जीव न हों **तथा पर के उपरोधरहित होता है।** वहाँ किसी की आज्ञा

विरुद्ध न हो कि इतने क्षेत्र में तुम्हें कहीं विसर्जित नहीं करना। ऐसी आज्ञा उपरोधरहित हो। किसी का विरोध नहीं हो।

उस स्थान पर शरीरधर्म करके... लो, मल या मूत्र वह शरीर धर्म है-शरीर का स्वभाव है। **फिर जो परसंयमी उस स्थान से उत्तर दिशा में कुछ डग जाकर उत्तरमुख खड़े रहकर, कायकर्मों का (शरीर की क्रियाओं का), संसार के कारणभूत हों ऐसे परिणामों का...** लो, यह संसार के कारणभूत परिणाम थे। यह ऐसे करना... ऐसे करना... यह विकल्प था न वह ? **संसार के निमित्तभूत मन का उत्सर्ग करके,...** उस मन को भी जरा ध्यान में होकर छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कायोत्सर्ग अर्थात् काया और मन को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो, उसे यहाँ कायोत्सर्ग कहा जाता है। मन का संग छोड़े। आहाहा!

निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है... मल और मूत्र (विसर्जित) करने के पश्चात् अपने ध्यान में आत्मा को लेकर अव्यग्ररूप से एकाग्र होकर, आनन्दस्वरूप आत्मा का ध्यान करे। उसे ध्येय में लेकर स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। देखो! उस समिति के पश्चात् यह। व्यवहारसमिति के विकल्प के बाद यह कर्तव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूरी बात ही बदल डाली। सब बदल गयी एक-एक बात। परम्परा से वीतराग का मार्ग था, वह सब बदल डाला। नये कल्पित शास्त्र ही बनाये न! कल्पित। ईरियावही करना, वह तो वापस विकल्प है। भाषा है न वह ? वह भाषा का विकल्प है। यह तो कहते हैं, मन का संग छोड़कर अन्दर ध्यान में जाना, ऐसा कहते हैं। इतना भी विकल्प शरीर है, तो अन्न ग्रहण है, तो मल-मूत्र है, वह भी स्वरूप में तो है नहीं; इसलिए यह विकल्प आया, वह संसार का कारण है, बन्धन का कारण है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! मन का संग करके परिणाम उत्पन्न हुए, वह भी बन्ध का कारण है। भारी सूक्ष्म (बात है)।

निज आत्मा को अव्यग्र (एकाग्र) होकर ध्याता है... भगवान को ध्यावे और अरिहन्त को ध्यावे, ऐसा नहीं कहा। अरिहन्त का ध्यान करे, अरिहन्त का ध्यान करे, वे तो पर हैं। पर का ध्यान करे, वहाँ तो राग है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन है। **अथवा पुनः पुनः कलेवर की (शरीर की) भी अशुचिता...** अहो! यह शरीर! जिसमें माँस, हड्डियाँ,

चमड़ी, विष्टा, पेशाब (भरा हुआ है)। आहाहा! आत्मा का ऐसे ध्यान करे और या यह विकल्प / विचार करे। **अशुचिता सर्व ओर से भाता है,...** शरीर का, शरीर के प्रत्येक अवयवों की अशुचिपने की भावना करे। **उसे वास्तव में प्रतिष्ठापनसमिति होती है।** ऐसे सन्त को यह प्रतिष्ठापन-छोड़ना, बोसराना होता है। अस्ति-नास्ति करते हैं।

दूसरे स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को कोई समिति नहीं होती। आहाहा! स्वच्छन्दवृत्ति-वीतरागमार्ग को छोड़कर अपनी कल्पना से मार्ग में पड़े होते हैं, ऐसे **स्वच्छन्दवृत्तिवाले यतिनामधारियों को...** यति अर्थात् साधु। **कोई समिति...** एक भी **नहीं होती।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं यह कहते हैं। लो! **पइट्ठासमिदी हवे तस्स**-है न? उसमें से निकाला कि दूसरों को नहीं होती। पाठ है न **पइट्ठासमिदी हवे तस्स** इन्हें होती है; स्वच्छन्दियों को नहीं होती, ऐसा इसमें से निकाला। अस्ति-नास्ति। आहाहा! देखो! ऐसा मुनिपना होता है। गृहस्थाश्रम में वस्त्र पहने हों, गृहस्थाश्रम में हो और मुनिपना आवे, ऐसा तीन काल में नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आदान अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : लेना, कहा न। निक्षेप अर्थात् छोड़ना। पुस्तक लेना और रखना। लेना और रखना।

मुमुक्षु : आदान-प्रदान के बाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्न कहा न, अभी बात हो गयी। कहाँ ध्यान था। भण्डमति इसमें नहीं। आदाननिक्षेपण एक ही नाम है।... अर्थात् वासण होता है। तब कहाँ थे?.... यह श्वेताम्बर की शैली की भाषा है। सनातनमार्ग में यह वस्तु थी ही नहीं। आहाहा! आदान निक्षेपणा समिति बस। उसमें वापस पुस्तक का नाम नहीं दिया। यह तो बीच में आती है। अन्दर उसको पात्र होवे ही, वस्त्र होवे ही, वह तो मुनि ही नहीं है। वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : अपवादमार्ग होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपवाद इस विकल्प का होता है।

मुमुक्षु : उत्सर्ग का तो इस काल में अभाव ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्सर्ग बिना अपवाद होता ही नहीं। है न, तर्क है न ? आहाहा! इसके लिए तो यह कथन है कि जिसे अन्तर निश्चय संयम तो प्रगट हुआ है। निश्चयदर्शन भी है परन्तु जो चारित्र की पूर्णता चाहिए, वह नहीं है; इसलिए उसे विकल्प उठता है, उसे अपवादी संयम कहा जाता है। अपवाद है। चाहे जैसा निमित्त हो, कहा था न ? चाहे जैसा क्या न हो ? मुनि को तो इतना ही होता है, इसके अतिरिक्त... चाहे जैसा निमित्त नहीं होता। खबर है न ? ऐसा कहते हैं। अपवाद क्या कहा था न यहाँ ? अपवादी मुनि कहे हैं। खबर है न ? लींबड़ीवाले केशवलाल ने कहा था। परन्तु क्या करे ? रहना उसमें तो बचाव किये बिना चलता नहीं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! सत्य तो यह है। वस्तु का स्वरूप यह है। वाद-विवाद करनेयोग्य नहीं है। किसके साथ वाद-विवाद करे ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी वह विकल्प है, उतना अपवाद है। वस्तु तो जो अनुभव और स्थिरता संयम है, वही है। ऐसे को ऐसा अपवादी होता है। इसके अतिरिक्त होता नहीं।

श्लोक-८८

अब, ६५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं—

(मालिनी)

समितिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं,
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिन्तापराणाम्।
मधुसख-निशितास्त्र-व्रातसम्भिन्नचेतः,
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात्॥८८॥

(हरिगीतिका)

जिनमार्ग में जो कुशल एवं आत्म चिन्तन लीन हैं।
ऐसे यती को यह समिति साम्राज्य-शिव का मूल है॥

जिनका हृदय घायल हुआ है काम अस्त्र समूह से।
उन मुनिगणों को तो समिति यह कभी भी दिखती नहीं॥

[श्लोकार्थः—] जिनमत में कुशल और स्वात्मचिन्तन में परायण, ऐसे यतियों को यह समिति मुक्तिसाम्राज्य का मूल है। कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं।

श्लोक-८८ पर प्रवचन

अब, ६५ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं —

समितिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं,
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिन्तापराणाम्।
मधुसख-निशितास्त्र-व्रातसम्भिन्नचेतः,
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात्॥८८॥

श्लोकार्थ : जिनमत में कुशल... है मुनि। देखा ? वीतराग का मार्ग ऐसा है सन्त का, ऐसे जैनमत में सन्त कुशल हैं। वह यह जैनमत है, यह वीतराग मत है। **और स्वात्मचिन्तन में परायण,...** वापस। अकेले ज्ञान कुशल हैं इतना नहीं—यहाँ ऐसा कहते हैं। वीतराग परमात्मा ने गुरुपना, देवपना, धर्मपना जो कहा, उसमें वे कुशल हैं, विचक्षण हैं, समझदार हैं। **और स्वात्मचिन्तन में परायण,...** आत्मध्यान अन्तर आनन्दस्वरूप परायण तत्पर ही हैं। आत्मा के आनन्द के ध्यान में तत्पर हैं। अकेला कुशलपना नहीं, ऐसा। तदुपरान्त स्वरूप की स्थिरता के ध्यान में परायण हैं।

ऐसे यतियों को... यति अर्थात् स्वरूप का यत्न करनेवाले को, रागरहित आत्मा के स्वभाव का यत्न करनेवाले को। **यह समिति मुक्तिसाम्राज्य का मूल है।** मुक्तिरूपी साम्राज्य का यह मूल है। लो, यह साम्राज्य। **कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं।** आहाहा! कहते हैं कि जिसे वासना, कामदेव की वृत्ति उठती है, ऐसे अस्त्रसमूह से भिदे हुए, (अर्थात्) जिसका हृदय

विषय-वासना के भाव से भिद गया है। जहाँ-तहाँ अनुकूलता, स्त्री आदि के शरीर को देखकर और उसे प्रेम उत्पन्न होता है, वह कामबाण से घाते गये हैं। आहाहा!

कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्र समूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं। उन्हें समिति नहीं होती और समिति का ज्ञान भी उन्हें नहीं होता। ऐसी समिति का ऐसा ज्ञान भी नहीं और वह समिति भी नहीं। आहाहा! गजब भाई! **तीक्ष्ण अस्त्र समूह...** वे ही वृत्तियाँ बारम्बार उठती हों। स्त्री के परिचय में रहे, संग में रहे, ऐसी वृत्याँ उठे, कहते हैं कि उनसे उसका हृदय भिंद गया है। उसे इस समिति का, निश्चय का आचरण नहीं होता। तो व्यवहार भी उसे नहीं होता।

ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा के स्वरूप में जिनकी रमणता है, ऐसे सन्तों को ऐसी समिति होती है। आहाहा! पूरी दुनिया से उदास हो गया है। विकल्प के शुभभाव से भी उदास है। उसे ऐसी वासना उत्पन्न नहीं होती। जिसे यह वासना-आत्मा के आनन्द से उल्टी वृत्तियाँ-उदभवित होती है, ऐसे घायल हृदयवाले को समिति नहीं होती।

श्लोक-८९

(हरिणी)

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यङ्गनाभिमतामिमां,
भवभवभयध्वान्तप्रध्वन्सपूर्णशशिप्रभाम्।
मुनिप तव सद्दीक्षा-कान्तासखी-मधुना मुदा,
जिनमततपःसिद्धं याया: फलं किमपि ध्रुवम्।।८९।।

(वीरछन्द)

मुक्ति कामिनी को जो प्रिय है सर्व समिति में समिति यही।
भवभय तम के नाश हेतु जो प्रभा समान कलाधर की॥
हे मुनि! जान प्रमोदभाव से, सखि-सत्-दीक्षा-कामिनी की।
प्राप्ति करे जिनकथित तपस्या-साध्य किसी शाश्वत फल की॥

[श्लोकार्थः—] हे मुनि! समितियों में की इस समिति को—कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है, जो भव-भव के भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है तथा तेरी सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की) सखी है; उसे अब प्रमोद से जानकर, जिनमतकथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा।

श्लोक-८९ पर प्रवचन

८९ वाँ कलश।

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यङ्गनाभिमतामिमां,
भवभवभयध्वान्तप्रध्वन्सपूर्णशशिप्रभाम्।
मुनिप तव सद्दीक्षा-कान्तासखी-मधुना मुदा,
जिनमततपःसिद्धं याया: फलं किमपि ध्रुवम्।।८९।।

श्लोकार्थ : हे मुनि! समितियों में की इस समिति को कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है,... लो, ठीक। अन्तर का शुद्ध निर्मल परिणमन समिति, वह मुक्त अर्थात् आनन्दरूप की पूर्ण दशा, उसे प्रिय है अर्थात् उस दशा से उसे मुक्ति होगी। आहाहा! **हे मुनि! समितियों में की इस समिति को कि जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है, जो भव-भव के भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है...** अहो! सम-इति। आत्मा में एकाग्र होकर आनन्द की परिणति होना। कल दो प्रकार आये थे न? कि आत्मा में एकाग्र होना या धर्मस्वभाव में एकाग्र होना, सब एक ही है। भाषा दो आयी। वही वास्तविक समिति है।

भव-भव के भय... अहो! चौरासी लाख का। भव-भव अर्थात् चौरासी लाख का **भयरूपी अन्धकार को नष्ट करने की लिये...** आनन्दस्वरूप भगवान की अन्तर में एकाग्रता, लगन, अन्दर एकाग्रता होना, वह **पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है...** आहाहा! **तेरी सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की) सखी है;...** तेरी दीक्षा जो अकषायपरिणति, वीतरागभाव की दशा, वह दीक्षा है। उसकी यह कान्ता सखी है। दीक्षारूपी कान्ता, उसकी यह सखी है। समिति उसकी सखी है। यह तो निरालम्बी मार्ग

है। जहाँ विकल्प का भी आश्रय नहीं। आहाहा! मार्ग की श्रद्धा खबर नहीं होती। आचरण तो बाद में। आहाहा!

तेरी सत्-दीक्षा... देखो! सत्-दीक्षा। वस्त्र छोड़ दिये और नग्न हुए, वह नहीं। सत्-दीक्षा। आत्मा के आनन्दस्वरूप की परिणति जिसने प्रगट की है, ऐसी सच्ची दीक्षा। यह तो वस्त्र छोड़े और हो गयी दीक्षा। यह तो सत्स्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द के स्वरूप से सत् है, उसकी वीतराग परिणति प्रगट होना, उसे यहाँ सत्-दीक्षा कहने में आता है। उस **सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की)...** मुनि को तो वीतराग परिणति प्रिय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहारनय के विकल्प आदि अट्ठाईस मूलगुण उन्हें प्रिय नहीं हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। (वे तो) हेयबुद्धि से आते हैं। आहाहा!

यहाँ तो दीक्षारूपी प्रिय स्त्री, सच्ची दीक्षा, ऐसा। जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की परिणति में जिसे निर्मलता प्रगट हुई है। वीतरागभावरूपी दशा प्रगट हुई है, उसे यहाँ दीक्षा कहा जाता है। उसे सच्ची दीक्षा कहते हैं। बाकी सब मिथ्या दीक्षा है। अरे रे! गजब! उसकी सखी है। ऐसी वीतरागदशारूपी आत्मा की परिणति—सच्ची दीक्षा, वह समिति इसकी सखी है, सहेली है, साथ रहनेवाली है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उसे अब प्रमोद से जानकर,...** जानकर, प्रमोद से जानकर। उकताहट न लावे। अहो!

मुमुक्षु : पर्याय को, और प्रमोद से जानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : पर्याय के सन्मुख तो देखना नहीं और फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखना नहीं, परन्तु आता है या नहीं? ऐई! ऐई! क्या कहते हैं यह? अन्दर सब बातें चलती हो न। पर्याय वह उत्पन्न करने की अपेक्षा से उपादेय है। वीतरागभाव। आदरणीय की अपेक्षा से द्रव्य उपादेय है। ऐसी बात है। त्रिकाली भगवान आत्मा तो खास उपादेय... उपादेय... उपादेय... है। वह श्रद्धा में यह, ज्ञान में वह और चारित्र में भी वही है।

मुमुक्षु : परिणमे तब या पहले?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु परिणमन बिना कहाँ से उपादेय आया? उसका आश्रय किया, इसलिए उपादेय हुआ, तब उसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का परिणमन हुआ।

मुमुक्षु : परन्तु परिणमन की बात किसलिए करते हो? वह तो पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय आती नहीं? जानने योग्य नहीं? पर्याय होती नहीं? और कार्य तो सब पर्याय में होता है। कार्य द्रव्य-गुण में होता है? निर्मल वीतरागी पर्याय की यहाँ बात है। द्रव्य के ज्ञान के साथ पर्याय ऐसी होती है, उसका ज्ञान हो, उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रमाणज्ञान तो हेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय है, परन्तु है उसे हेय है या नहीं है, उसे हेय? प्रमाण में इसका-पर्याय का आश्रय है, वह हेय है। वस्तु हेय है? वस्तु तो त्रिकाल है। प्रमाणज्ञान में प्रमाण नहीं आता? जाननेयोग्य नहीं? व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान का अर्थ क्या हुआ? शक्ति के वर्णन में तो ऐसा भी आया है। भगवान आत्मा द्रव्य से शुद्ध, गुण से शुद्ध, उसका भान होने पर पर्याय से शुद्ध होता है, तब उसे प्रमाणज्ञान कहने में आता है। अशुद्धता की बात नहीं है।

मुमुक्षु : सब शक्तियों में ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब शक्तियों का वर्णन है। शक्ति में सैंतालीस शक्ति त्रिकाली गुण है और गुण का धारक आत्मा का जहाँ आश्रय किया, उसमें शुद्धता ही परिणमती है। उसका - व्यवहारनय का विषय उसकी पर्याय है। शुद्धदशा, वह व्यवहारनय का विषय है। सद्भूतव्यवहारनय (का विषय है)। रागादि की बात यहाँ नहीं है। सत्शक्ति है न? ज्ञानानन्द आदि अनन्त शक्तियाँ हैं, उनका धारक एक द्रव्य है, ऐसे द्रव्य का आश्रय लिया, अनन्त गुण की शक्ति सत् है, वह शुद्ध परिणमती है।

'सर्व गुणांश, वह समकित।' श्रीमद् ने ऐसा संक्षिप्त वाक्य कहा। 'सर्व गुणांश, वह समकित।' जितने अनन्त गुण हैं, उनमें द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई, वे जितने गुण हैं, वे सब निर्मलरूप से-आंशिक शुद्धरूप से हुए। वह सर्व गुणांश, वह समकित। राग, वह समकित और अमुक, वह समकित-ऐसा वहाँ नहीं कहा। समझ में आया? देव-शास्त्र-गुरु, वह

समकित-ऐसा वहाँ नहीं कहा। ऐई! है न अपने यहाँ? 'सर्व गुणांश, वह समकित।' बाहर दरवाजे पर (लिखा है)। एक ओर समकित है तथा एक ओर चारित्र। बाहर दोनों दरवाजों पर दोनों हैं। स्वरूप में रमना, वह चारित्र। पाँच महाव्रत का विकल्प-विकल्प वह व्यवहारचारित्र है। गजब मार्ग भाई! मार्ग ऐसा है, वह जिसे रुचता नहीं न, वह ऐसा कहता है कि यह नहीं... नहीं... अपने को...

जिनमतकथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे... ....वीतराग अभिप्राय से त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने परमेश्वर देवाधिदेव जिसे आत्मा कहा और उसकी समिति निर्मल कही, ऐसे जिनमतकथित—वीतराग भगवान ने कहे हुए तप अर्थात् मुनिपना। ऐसा मुनिपना। स्वरूप की रमणता के आनन्द के लहर में जो स्थित होता है, ऐसा जो तप अर्थात् मुनि, ऐसा मुनिपना। उससे **सिद्ध होनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा।** भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा वीतराग कहा, उसके सब गुण भी वीतरागी कहे और उनका आश्रय लेकर प्रगट होनेवाली दशाएँ भी वीतरागी दशा है। तीनों वीतरागरूप हुए हैं। ऐसा जो जिनमत का कथन अथवा वाच्य जो है, ऐसे मुनिपने की दशा... आहाहा! एक सेकेण्ड भी मुनि की दशा... भवजल तारणहार। अन्दर में जहाज शीघ्रता से चला। मुक्ति के प्रयाण में चारित्र का जहाज शीघ्रता से चला। आहाहा! एकदम पूर्ण परमात्मा के सुख को प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। देखो न! ऐसे मुनिपने से सिद्ध होनेवाले, साबित होनेवाले फलरूप से आनेवाले **ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा।** देखो! पर्याय को ध्रुव कहा। ऐसी पर्याय मिलेगी कि वह पर्याय बाद में छूटेगी नहीं - ऐसा कहते हैं। चार गति तो छूट जाती है। देवगति कहे, अमर कहे। अमर कहे, वह भी मर जाते हैं। तैंतीस सागर में, इकतीस सागर में। यह तो लम्बा काल रहते हैं, इसलिए उन्हें अमर कहा जाता है। वह तो व्यवहार से अमर है। बहुत लम्बा आयुष्य है... अमर तो भगवान आत्मा की मुक्त गति, वह अमर है। उसे यहाँ ध्रुव कहा है। कहो, ध्रुव, अचल, अनुपम आया न? (समयसार) पहली गाथा। वह शब्द प्रयोग किया है। सन्तों की मर्यादा है न? उसी और उसी में से लेकर बातें करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप की एकाग्रता करने से, स्वरूप की रमणतारूप मुनिपना प्रगट होने पर, उससे निश्चित और अनुपम, जो पर्याय वापिस नहीं हटती, ऐसी

दशा / ध्रुवपर्याय को प्राप्त करेगा। सिद्ध की पर्याय कहो या ध्रुवपर्याय कहो, एक ही बात है। ध्रुव का अर्थ (यह कि) वह पर्याय वापिस फिरकर संसार आवे, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

जिनमतकथित तप से... वापिस ऐसा। वीतराग भगवान ने-परमेश्वर ने कहा हुआ। अज्ञानी कहें आत्मा का और मोक्ष का मार्ग, वह बात अज्ञानी में सच्ची होती नहीं। सब कल्पित बातें होती हैं। **जिनमतकथित... 'जिनमततपःसिद्धं याया: फलं किमपि ध्रुवम्' 'याया:'** अर्थात् प्राप्त करेगा न? **'याया:'** प्राप्त करेगा। अहो! अनाकुल आनन्द की मूर्ति, प्रभु! ऐसे आत्मा में एकाग्र होकर, जो वीतरागदशा, तेरी सत् दीक्षा, उसकी यह समिति एकाग्रता अन्दर में, यह उसकी सखी है और ऐसे अभिप्रायसहित स्थिरता। त्रिकाली द्रव्य में द्रव्यदृष्टिसहित स्वरूप में स्थिरता, वीतरागी परिणति से तो तुझे ध्रुव फल मिलेगा। बदलना पड़े, ऐसी गति नहीं मिलेगी, ऐसा कहते हैं। वहीं का वहीं स्थिर रहेगा। वह सिद्ध की गति सादि-अनन्त पर्याय में ही ऐसा का ऐसा रह जाएगा। आहाहा!

देखो न... सवेरे एक खरगोश था न? खरगोश का छोटा बच्चा था। इस चपेट में आ गया होगा? क्या कहलाता है? इतना छोटा था बेचारा। भगवान अन्दर से निकल गया। जीवित था, तब तक आऊँ... आऊँ... आऊँ... कहाँ धूल में है तू? यह तो मिट्टी है। ऐसे पड़ा था। ट्रक में बहुत मर जाते हैं। सियाल, चूहे, सर्प, मेंढ़क। बेचारे मेंढ़क का चूरा हो जाता है, पक्षी... आहाहा! स्थिति पूरी होवे, तब प्रभु अन्दर से चल निकलता है। शरीर यहाँ पड़ा रहता है। था वहाँ तक यही मैं हूँ, ऐसा मानता था। कहते हैं कि वीतरागभाव से शरीर छूटे, उसे ध्रुवफल मुक्ति प्राप्त करे, ऐसा कहते हैं। यह तो स्वयं की मान्यता वहाँ थी और शरीर तो चला गया। शरीर छोड़ा नहीं, छूट गया है। आहाहा!

ऐसे फल तो तू प्राप्त करेगा।

श्लोक-९०

(द्रुतविलंबित)

समितिसंहतितः फल-मुत्तमं सपदि याति मुनिः परमार्थतः।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम्।।९०।।

(वीरछन्द)

समिति संगति द्वारा मुनिगण मन अरु वचन अगोचर जो।
ऐसा कोई केवलसुख अमृतमय उत्तम फल पाते॥

[श्लोकार्थः—] समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि, मन-वाणी को भी अगोचर (मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य) ऐसा कोई केवलसुखामृतमय उत्तम फल शीघ्र प्राप्त करता है।

श्लोक-९० पर प्रवचन

९०वाँ कलश।

समितिसंहतितः फल-मुत्तमं सपदि याति मुनिः परमार्थतः।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम्।।९०।।

आहाहा! क्या कहते हैं? **श्लोकार्थ : समिति की संगति द्वारा...** भाषा देखो! जिसने आत्मा में वीतरागता की पर्याय के साथ संगति की है। आहाहा! जिसने राग का संग छोड़ दिया है। **समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि,...** ऐसे सन्त... आहाहा! केवली का तो विरह पड़ा, परन्तु ऐसे सन्त-मुनियों का विरह पड़ा। आहाहा! कहते हैं कि **समिति की संगति द्वारा....** राग का संग नहीं, निमित्त का संग नहीं - ऐसा कहते हैं। शुद्ध भगवान पवित्र आनन्द के संग द्वारा, उसकी संगति।

मुमुक्षु : व्यवहार में से निश्चय निकालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; निकालते हैं, तब उनको रुचता नहीं। व्यवहार कहने का हेतु क्या है? निश्चय है। उसे (व्यवहार को) छोड़कर स्थिर होने के लिए व्यवहार का हेतु है।

...मुनि तो मुक्त ही हैं परन्तु विकल्प है, उतनी अस्थिरता है। उसे छोड़कर स्थिरता में जा। इसके लिए व्यवहार बतलाते हैं। यह व्यवहार आता है, उसे बतावे तो सही न! ज्ञान तो करावे न! जाना हुआ प्रयोजनवान है।

समिति की संगति द्वारा... वे इसमें से व्यवहारसमिति ले लेते हैं। ऐई! यहाँ तो समिति की संगति अन्दर वीतराग परिणति का परिचय, उसकी संगति। आहाहा! इस बात को भी सुनते हुए इसे प्रमोद आवे, ऐसी यह तो चीज़ है। आहाहा! **समिति की संगति द्वारा...** पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी व्यवहार के स्थान में निश्चय वस्तु आदरणीय तो वही है। व्यवहार आता है, वह जाननेयोग्य है। ऐसा होता है। जब व्यवहार विकल्प होता है, तब होता है, बस इतना।

वास्तव में मुनि, मन-वाणी को भी अगोचर... आहाहा! मन के विकल्प को और वाणी से अगम्य, ऐसी चीज़। **(मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य)...** ऐसे दो अर्थ किये। मन से तो अचिन्त्य हैं। मन से ज्ञात हो, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! वाणी से अकथ्य है। क्या कहे इसे? पुण्य-पाप के रागरहित वीतरागपरिणति। उस वीतरागपरिणति को क्या कहना? कुछ दृष्टान्त दो, कहते हैं, लो! परन्तु इसमें दृष्टान्त क्या? वस्तु वीतराग... राग से छूटकर उसमें एकाग्र होना, उसका नाम वैराग्य परिणति है। उसका नाम मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य। **ऐसा कोई...** ऐसा कोई, आहाहा! ऐसा कि अलौकिक। **केवलसुखामृतमय...** आहाहा! ऐसी रमणता द्वारा भगवान तुझे केवलसुखामृत अकेला सुख और अमृत का सागर, ऐसे **उत्तम फल...** तू प्राप्त करेगा। वह भी **शीघ्र प्राप्त करता है।** वापस ऐसा। शीघ्र प्राप्त करता है, उसमें क्रमबद्ध कहाँ गयी? इसका अर्थ कि ऐसा होवे, उसे अल्प काल में क्रम में वही मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। जिसे ऐसी दशा अन्दर हो, उसे अल्प काल में उसके क्रम में मुक्ति आती ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कोई केवलसुखामृतमय उत्तम फल... वह भी सपदि... सपदि है न? भाषा तो बहुत सब आयी है, हों! **शीघ्र प्राप्त करता है।** आहाहा! ऐसी चारित्र की सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की रमणता, उसे तो मुक्ति अल्प काल में प्राप्त होगी। संसार का अल्प काल में अन्त आयेगा। समिति की व्याख्या करते हुए समिति का-भावसमिति का प्रमोद और उसका फल बताया। लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)